जैनधर्म में व्यसनमुक्त जीवन का तुलनात्मक अध्ययन

—प्रो. जनेश्वर मौआर

जैनधर्म में भगवान् महावीर की देन अद्वितीय है, मृत्यु और व्यसन इन दोनों में से व्यसन अधिक हानिप्रद है। क्योंकि मृत्यु एक बार ही कष्ट देती है पर व्यसनी व्यक्ति जीवन-भर कष्ट पाता है और मरने के पश्चात् भी वह नरक आदि में विभिन्न प्रकार के कष्टों को झेलता है। जबकि अव्यसनी व्यक्ति जीते-जी भी यहाँ पर सुख के सागर पर तैरता है और मरने के पश्चात् स्वर्ग-सुख का उपभोग करता है।

व्यसन शब्द संस्कृत भाषा का है, जिसका परिणाम है—कष्ट। यहाँ हेतु में परिणाम का उपचार किया गया है। जिन प्रवृत्तियों का परिणाम कष्टकर हो, उन प्रवृत्तियों को व्यसन कहा गया है। व्यसन एक ऐसी आदत है जिसके बिना व्यक्ति रह नहीं सकता, व्यसनों की प्रवृत्ति अचानक नहीं होती। पहले व्यक्ति आकर्षण से करता है फिर उसे करने का मन होता है, एक ही कार्य को अनेक बार दोहराने पर वह व्यसन बन जाता है।

व्यसन बिना बोये हुए ऐसे विष वृक्ष हैं, जो मानवीय गुणों के गौरव को राख में मिला देते हैं। ये विषवृक्ष जिस जीवनभूमि में पैदा होते हैं, उसमें सदाचार के सुमन खिल ही नहीं सकते।

व्यसनों की तुलना हम उस गहरे गर्त से कर सकते हैं जिसके ऊपर हरियाली लहलहा रही हो, फूल खिल रहे हों, पर ज्यों ही व्यक्ति उस हरियाली और फूलों से आकर्षित होकर उन्हें प्राप्त करने की चेष्टा करता है त्यों ही वह दल-दल में फँस जाता है। व्यसनशील व्यक्ति की बुद्धिमत्ता, कुलीनता आदि समाप्त हो जाती है।

यों तो व्यसनों की संख्या का कोई पार नहीं है, वैदिक ग्रन्थों में व्यसनों की संख्या १८ बताई गई हैं। उन १८ में १० व्यसन कामज हैं और ८ व्यसन क्रोधज हैं।

कामज व्यसन हैं—मृगया (शिकार), जुआ, दिन का शयन, पर-निन्दा, परस्त्रीसेवन, मद, नृत्यसभा, गीतसभा, वाद्य की महफिल और व्यर्थ भटकना।

आठ क्रोधज व्यसन हैं—चुगली खाना, अतिसाहस करना, द्रोह करना, ईर्ष्या, असूया, अर्थदोष, वाणी से दण्ड और कठोर वचन।

जैनाचार्यों ने व्यसन के मुख्य सात प्रकार बताये हैं—जुआ, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्रीगमन।

द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या, पापर्द्धि चौर्यं परदारसेवा।
एतानि सप्तव्यसनानि लोके घोरातिघोरं नरकं नयन्ति॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सातों व्यसनों में अन्य जितने भी व्यसन हैं उन सभी का अन्तर्भाव हो जाता है।

आचार्य हरिभद्र ने मद्यपान करने वाले व्यक्ति में सोलह दोषों का उल्लेख किया है—वे दोष इस प्रकार हैं—शरीर विद्रूप होना, शरीर विविध रोगों का आश्रयस्थल होना, परिवार से तिरस्कृत होना, समय पर कार्य करने की क्षमता न होना, अन्तर्मानस में द्वेष पैदा होना, ज्ञान तन्तुओं का धुँधला हो जाना, स्मृति का लोप हो जाना, बुद्धिभ्रष्ट होना, सज्जनों से सम्पर्क समाप्त हो जाना, वाणी में कठोरता आना, नीच कुलोत्पन्न व्यक्तियों से सम्पर्क, कुलहीनता, शक्तिह्रास, धर्म-अर्थ-काम तीनों का नाश होना।

महाकवि कालिदास ने एक मदिरा बेचने वाले व्यक्ति से पूछा—तुम्हारे पात्र में क्या है ? मदिरा बेचने वाला दार्शनिक था, उसने दार्शनिक शब्दावली में कहा—कविवर ! मेरे प्रस्तुत पात्र में आठ दुर्गुण हैं—मस्ती, पागलपन, कलह, धृष्टता, बुद्धि का नाश, सच्चाई और योग्यता से नफरत, खुशी का नाश और नरक का मार्ग।

शिकार को जैन ग्रन्थों में पापर्द्धि कहा गया है पापर्द्धि से तात्पर्य है—पाप के द्वारा प्राप्त ऋद्धि, इसलिए आचार्य ने शिकारी की मनोवृत्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है—जिसे शिकार का व्यसन लग जाता है वह मानव प्राणीवध करने में दया को तिलांजलि देकर हृदय कठोर बना लेता है ! वह अपने पुत्र पर भी दया नहीं रख पाता।

जैन साधना पद्धति में व्यसन-मुक्ति साधना के महल में प्रवेश करने का प्रथम द्वार है।

जब तक व्यसन से मुक्ति नहीं होती, मनुष्य में गुणों का विकास नहीं हो सकता। इसलिए जैनाचार्यों ने व्यसन-मुक्ति पर अत्यधिक बल दिया है। व्यसन से मुक्त होने पर जीवन में आनन्द का सागर ठाठें मारने लगता है।

जनतन्त्रमूलक युग के लिए व्यसन-मुक्ति एक ऐसी विशिष्ट आचार पद्धति है जिसके परिपालन से गृहस्थ अपना सदाचारमय जीवन व्यतीत कर सकता है और राष्ट्रीय विकास के कार्यों में भी सक्रिय योगदान दे सकता है।

दर्शन के दिव्य आलोक में ज्ञान के द्वारा चारित्र की सुदृढ़ परम्परा स्थापित कर सकता है। यह एक ऐसी आचार-संहिता है जो केवल जैन गृहस्थों के लिए ही नहीं, किन्तु मानवमात्र के लिए उपयोगी है। यह व्यावहारिक जीवन को समृद्ध व सुखी बना सकती है तथा निःस्वार्थ कर्त्तव्य भावना से प्रेरित होकर राष्ट्र में अनुपम बल और ओज का संचार कर सकती है। सम्पूर्ण मानव-समाज में सुख-शांति व निर्भयता भर सकती है। अतः व्यसनमुक्त जीवन सभी दृष्टियों से उपयोगी और उपादेय है।

—o—

[जिस तरह श्लेष्म में पड़ी हुई मक्खी श्लेष्म से बाहर निकलने में असमर्थ होती है वैसे ही विषय रूपी श्लेष्म में पड़ा हुआ व्यक्ति अपने आपको विषय से अलग होने में असमर्थ पाता है।—इन्द्रिय पराजय शतक ४६]

◆

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org